

वर्तमान में शिक्षा, स्वास्थ्य और योग दर्शन

डॉ० गीता रानी

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र
बी०एस०एन०वी०पी०जी० कालेज, लखनऊ।

शोध-सार

भारतीय समाज में भौतिकता की चका-चौध से शायद ही कोई अछूता हो, चाहे ग्रामीण क्षेत्र हो या नगरीय, सभी में आधुनिकता की स्पष्ट झलक व्यक्ति की वेशभूषा, खानपान, रहन सहन, भाषा शैली, इत्यादि में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के रूप में देखी जा सकती है या यूँ कहें कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक क्षेत्र इससे पूर्णतया आकर्षित हैं। प्रत्येक सामाजिक वर्ग तीव्रता के साथ आधुनिक जीवन शैली को अपनाकर आनंदित व प्रफुल्लित हो रहे हैं। इस भ्रम में कि वह समृद्धि व प्रगति की दिशा में अग्रसर हैं। पर शायद वह अपनी ऐसी दृष्टि के कारण समाज को उस दशा व दिशा में परिवर्तित कर रहे हैं। जहाँ व्यक्ति जीवन मूल्यों के साथ-साथ उसके शरीर व मन पर भी दुष्प्रभाव तनाव, भगनाशा, और अशांति, जैसे मनोविकारों के रूप में देखा जा सकता है। जो लोगों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में वृद्धि कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए प्रयास किए जाने आवश्यक है। नित्य नए रोगों का जन्म दवाओं से अधिक होने के कारण स्वस्थ रहने के अन्य उपाय भी व्यक्ति के लिए आवश्यक समझे जा रहे हैं। विभिन्न चिकित्साओं यथा मनोचिकित्सा, औषधि चिकित्सा, आहार चिकित्सा, रस चिकित्सा, अंतः स्रावी चिकित्सा, यांत्रिक चिकित्सा, जीव चिकित्सा, स्नान चिकित्सा, शल्यकर्म इत्यादि के अतिरिक्त भारत में प्रचलित अन्य चिकित्साओं जैसे एलोपैथ, आयुर्वेद, और यूनानी, योग, रोगनिरोधन को अपनाकर रोगों का उपचार व निदान किया जा रहा है। इनमें योग को रोग की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझा जा रहा है जो कि न केवल रोगों के उपचार के साथ साथ मानसिक रोगों के निदान में अधिक सहायक सिद्ध हो रहे हैं। ओषधि से 'तन' तो 'मन' को 'योग' द्वारा साधने व स्वस्थ रखने का प्रयास किया जा सकता है। मानसिक अस्वस्थता को दूर कर मानसिक स्वास्थ्य एवं विकास की दिशा में योग शिक्षा द्वारा निम्नांकित कार्य किये जा सकते हैं। योग द्वारा व्यक्ति की चिंता, तनाव, संघर्ष व शिथिलता को भी दूर किया जा सकता है। योग क्रियाओं के माध्यम से स्नायु मंडल, मेरुदंड, और मन मस्तिष्क को स्वस्थ सजग और उसे पुष्टता प्रदान की जा सकती है। जिससे मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि की जा सके। शारीरिक और मानसिक व्याधिओं को दूर करने में योग शिक्षा का विशेष योगदान हो सकता है।

किसी भी समाज को तभी विकसित माना जा सकता है। जब वहाँ के व्यक्ति तन मन से पूर्णतया स्वस्थ हो और वह चरित्रवान, निष्ठावान होने के साथ साथ अपनी कार्यक्षमताओं को कौशल युक्त और ऊर्जावान बना सके। ऐसा तभी सम्भव है जब व्यक्ति सक्रिय, सजग प्राणी के रूप में अपना योगदान दे सके। समाज को शिक्षित कर उसकी अज्ञानता को दूर करे जिसको भारतीय समाज को भविष्य में आने वाले अस्वस्थता के संकट से बचाया जा सके और ज्ञान की रोशनी में योग की शरण में जीवन को भविष्य को सुरक्षित और संरक्षित किया जा सके।

वर्तमान में शिक्षा, स्वास्थ्य और योग दर्शन

आधुनिक युग में किसी भी राष्ट्र, समाज व परिवार की प्रगति व उन्नति का आधार सदैव से शिक्षा ही रहा है, विभिन्नताओं से परिपूर्ण भारत जैसे राष्ट्र में अति आवश्यक हो जाता है, सभी वर्ग, जाति, भाषा, धर्म, सम्प्रदाय, लिंग इत्यादि के लोगों को शिक्षा के सभी अवसर के साथ-साथ स्वास्थ्यपरक सुविधाओं की भी उपलब्धि हो ऐसा अनुभव किया जाता रहा है। प्रत्येक की यह आकांक्षा रहती है कि समाज में एक उत्तम व सुदृढ़ शिक्षा व्यवस्था हो सके। इस

हेतु उत्तम शिक्षा नीतियों, योजनाओं के साथ उत्तम स्वास्थ्य लाभ के लिये उच्च तकनीकी युक्त स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं, संस्थानों की व्यवस्था करना भी राष्ट्रधर्म हो जाता है। जिससे सभी सुखी, निरोगी व स्वस्थ बन सकें। भारतीय समाज में भौतिकता की चकाचौंध से शायद ही कोई अछूता रहा हो, चाहे ग्रामीण क्षेत्र हो, या नगरीय क्षेत्र सभी में आधुनिकता की स्पष्ट झलक व्यक्ति की वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, भाषा-शैली, इत्यादि में भारतीय एवं पाश्चात संस्कृति के रूप में देखी जा सकती है। या यूँ कहें कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक क्षेत्र इससे पूर्णतया आकर्षित है। प्रत्येक सामाजिक वर्ग तीव्रता के साथ आधुनिक जीवन-शैली को अपनाकर आनंदित व प्रफुल्लित हो रहे है। इस भ्रम में कि वह समृद्धि व प्रगति की दिशा में अग्रसर है, पर शायद वह अपनी ऐसी दृष्टि के कारण समाज को उस दशा व दिशा में परिवर्तित कर रहे हैं। जहाँ व्यक्ति के जीवन मूल्यों में झरण के साथ-साथ उसके शरीर व मन पर भी दुष्प्रभाव दबाव, तनाव, भगनाशा, नैराश्य अशान्ति जैसे मनोविकारों के रूप में देखा जा सकता है जिससे लोगों में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं बढ़ी हैं। ऐसी स्थिति में शरीर व मन को स्वस्थ रखने के लिये प्रयास किये जाते रहे हैं। नित्य नये रोगों का जन्म दवाओं से अधिक होने के कारण स्वस्थ रहने के अन्य उपाय भी व्यक्ति के लिये आवश्यक समझे जा रहे हैं। विभिन्न चिकित्साओं यथा-मनोचिकित्सा, औषधि चिकित्सा, आहार चिकित्सा यंत्रिक चिकित्सा तथा जीव चिकित्सा स्नान चिकित्सा, शल्यकर्म इत्यादि के अतिरिक्त वर्तमान में प्रचलित अन्य चिकित्सायें एलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक और यूनानी, योग, रोगनिरोधन को अपना कर रोगों का उपचार व निदान किया जा रहा है। इनमें योग को रोग को निदान में अधिक महत्वपूर्ण समझा जा रहा है, जो कि न केवल शारीरिक रोगों के उपचार को साथ-साथ मानसिक रोगों के निदान में अधिक सहायक हो रहे है। औषधि से 'तन' तो 'मन' को 'योग' द्वारा साधने और स्वस्थ रखने का प्रयास किया जा सकता है। मानसिक अस्वस्थता को दूर

कर मानसिक स्वास्थ्य एवं विकास की दिशा में 'योग' साधनों की शिक्षा बालक के प्रारम्भिक अवस्था से दिये जाने की आवश्यकता है। इससे पूर्व 'योग' से परिचित होना भी आवश्यक हो जाता है।

योग दर्शन के प्रणेता पतंजलि मुनि थे। यह योग सांख्य दर्शन के 'पूरक दर्शन' के रूप जाना गया है। यह दर्शन मुख्यतः मानव को ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है। जिस पर वह अग्रसर होकर अपने जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति कर सके। अन्य दर्शनों की भांति योगदर्शन तत्त्वमीमांसा के प्रश्नों ('जीव' और 'जगत' क्या है?) में न उलझा कर प्रमुखतः 'मोक्ष' प्राप्ति के उपाय बताने वाले दर्शन के रूप में भी जाना जाता है। किन्तु जीवन के अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति पर चिंतन करने वाले प्रत्येक दर्शन की कोई न कोई तात्विक पृष्ठभूमि आवश्यक रही है। यही वजह है कि योगदर्शन सांख्यदर्शन पर आश्रित है और उसके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा को भी स्वीकारता है। आरम्भ से ही योगदर्शन, सांख्यदर्शन एक दूसरे से सम्बन्धित रहे है।

मानव जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक उन्नति व प्रगति हेतु दर्शन का एक बड़ा व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक रूप 'योगदर्शन' में प्रस्तुत किया गया है। पतंजलि मुनि के योगसूत्रों की सर्वोत्तम व्याख्या व्यास मुनि द्वारा लिखित 'व्यास भाष्य' में स्पष्ट की गयी है कि किस प्रकार मानव अपने मन (चित) की वृत्तियों पर नियंत्रण रखकर जीवन को सफल बना सकता है और अपने अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति भी कर सकता है।

योगदर्शन 'सांख्य' के जैसा ही द्वैतवादी है। 'सांख्य' के तत्त्वमीमांसा को पूर्ण रूपेण से स्वीकारते हुए। उसमें केवल 'ईश्वर' को जोड़ता है और इसीलिए योगदर्शन को सईश्वर 'सांख्य' अर्थात् 'सईश्वर सांख्य' और 'सांख्य' को 'निरीश्वर' सांख्य कहा गया है। योगदर्शन में पुरुष

को केन्द्रिय विषय के रूप में रखा गया है। यद्यपि 'पुरुष' और 'प्रकृति' दोनों ही स्वतंत्र हैं परन्तु वास्तविक रूप से तो पुरुष सत्ता मुख्य व सर्वोच्च है। सांख्यदर्शन के अनुसार इस संसार में असंख्य पुरुष हैं, और एक ही सत्ता प्रकृति की प्रधानता की है। पुरुष चित् है, प्रधान अचित्। पुरुष 'नित्य' और आपरिवर्तन शील, प्रधान प्रकृति भी नित्य है। किन्तु परिवर्तनशील दोनों ही हैं। भले ही वे एक दूसरे से अलग अवश्य हैं परन्तु फिर भी दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। 'पुरुष' के सानिध्य से प्रकृति में परिवर्तन होने लगते हैं। यही सृष्टि का नियम है। प्रकृति में परिवर्तन भले ही हों परन्तु पुरुष प्रभावहीन रहता है। जैसे श्वेत स्खटिक के समक्ष रंगीन पुष्पों को लाने से उस पर अनेक रंग प्रतिविवित होते हैं। ठीक उसी प्रकार पुरुष पर प्राकृतिक विकृतियों के प्रतिविव भी परिलक्षित होने लगता है। क्रमशः वह बुद्धि से लेकर क्षिति तक रंजित होता हुआ प्रतीत होता है और अपने को प्रकृति के इन्हीं विकारों से सम्बद्ध समझने और मानने लगता है। यही वजह है कि आज वह अपने को धनी-निर्धन, दुर्बल-बलवान, कुटुंबी, सुखी, और समृद्धिशाली इत्यादि रूप में समझ रहा है और अपने वास्तविक स्वरूप से दूर होता जा रहा है। अज्ञानता वश प्रभमित है। प्रधान से बने हुए इन पदार्थों ने उसके वास्तविक स्वरूप को कई आवरणों से छिपा दिया है। यदि वह अपने इन 'आवरणों' को हटा सकें। तो वह अवश्य बन्धन मुक्त हो जाएगा। विपरीत क्रम से उसके सभी बंधन स्वतः टूट जाएंगे। अन्ततः उसे महाभूतों से (उच्चस्तर) पर पहुँच कर में प्रधान (प्रकृति) अलग होना से होगा। यह बन्धन वास्तविक न होकर भी बहुत सुदृढ़ प्रतीत होते हैं। उपायों व प्रयोगों से बंधनों को तोड़कर पुरुष अपने शुद्ध और वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाएगा उसी उपाय को ही 'योग' कहते हैं। सांख्य आचार्यों का मानना है कि यद्वा तद्वा तदुच्छतः परमपुरुषार्थः— अर्थात् जैसे भी हो पुरुष और प्रधान के इस कृत्रिम संयोग का अलगाव होगा वहीं परम पुरुषार्थ कहलाएगा।

महर्षि पतंजलि द्वारा स्पष्ट किया गया है कि 'चित की वृत्तियों को निरोध करना ही योग है। योगसूत्र में उन्होंने पूर्ण कल्याण तथा शारीरिक, मानसिक और अत्मिक शुद्धि के लिए आष्टांग योग के मार्ग को प्रशस्त किया है। तो वहीं इन आठों आयामों का अभ्यास नित्य रूप से एक साथ किये जाने पर भी बल दिया जाये। जिससे इन आठों अंगों के नियमों व आयामों के अभ्यास से सभी अशुद्धियों या कलेशों (मन और तन) का क्षरण स्वतः हो जाए। वे अष्टांग निम्नवत हैं।

1. यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, वृहमचर्य, अपरिग्रह पांच महावृत।
2. नियम— व्यैक्तिक नैतिकता, शौच— शरीर व मन की शुद्धि व शुचिता सन्तोष— सन्तुष्टी और प्रसन्नता अर्थात् किसी प्रकार की तृष्णा नहीं होना। तप— स्वयं से अनुशासित रहना अर्थात् स्वानुशासन। स्वाध्याय— आत्मचिंतन करना। ईश्वर प्राणिधान— सभी कार्यों के फल की इच्छा न रखते हुए सर्वश्रेष्ठ गुरु, ईश्वर (ईश भक्ति में लीन) होना।
3. आसन— योगासन द्वारा शारीरिक नियंत्रण। स्थिर निश्छल भाव से सुखपूर्वक बैठकर स्थिरता और सुख की प्राप्ति करना ही आसन है। जैसे, पदमासन, दण्डासन, स्वस्तिकासन इत्यादि।
4. प्राणायाम— श्वास—विधि अर्थात् श्वास लेने की खास तकनीकों द्वारा प्राणों को नियंत्रित करना।
5. प्रत्याहार— इन्द्रियों को अंतर्मुखी करना।
6. धारणा— एकाग्रचित् होना।
7. ध्यान— निरन्तर ध्यान लगना।
8. समाधि— आत्मा से योग करना, अर्थात् परम चैतन्य की अवस्था की प्राप्ति करना।

भगवत् गीता में भी 'योग' को कई अर्थों में परिभाषित किया गया है। परन्तु प्रत्येक योग अंततः 'आत्मा' से परमात्मा के मिलन को ही दर्शाता है। इसमें योग के कई स्वरूप बताये गये हैं, मुख्यतः तीन योग मानव अपने जीवन में

अपनाता है यथा—ज्ञानयोग, कर्मयोग तथा भक्ति योग।

न हि काश्चक्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ।।

(अध्याय 3 श्लोक 5)

अर्थात् निसन्देह कोई भी मानव किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कार्य किये नहीं रहता, क्योंकि सभी मानव (पुरुष) समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश है, और उन्हें कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।

गीता में श्रीकृष्ण जी अर्जुन को स्पष्ट करते हैं, कि जीवन में सबसे बड़ा योग 'कर्म योग' से ही इस योग से किसी को मुक्ति नहीं है। श्री कृष्ण स्वयं भी 'कर्मयोग' से बंधे हुए थे। अर्थात् कर्मयोग ईश्वर (परमात्मा) को भी बंधन में बाँधे रखता है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को (भगवत गीता में) 18 योग मुद्राओं के विषय में बताते हुए उनके मन का शुद्धिकरण किया था। (यथा—विषाद योग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्म, सन्यास योग, कर्मसन्यास योग, आत्मसंयम योग, ज्ञानविज्ञान योग, अक्षरब्रह्मयोग, भक्तियोग, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग, गुणश्रयविभाग योग, पुरुषोत्तम योग, देवासुर सम्पद्धि भागयोग श्रद्धाश्रयविभाग योग, मोक्ष संयासयोग इत्यादि।)

अरुस्तू का कथन है "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।" योग और स्वास्थ्य का घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। और इनके मध्य सम्बन्धों को कई प्रकार से परिभाषित भी किया गया है। 'योग' को एक 'तकनीकी' मानकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। चाहे शारीरिक व मानसिक कष्ट क्यों न हो। योग एक ऐसी स्थिति है। जिसकी प्राप्ति से वास्तविक लाभ की अनुभूति होती है। स्वास्थ्य का आशय 'स्व' में स्थित होना है। जिसे योग द्वारा ही संभव किया जा सकता है परन्तु आज 'योग' को सीमित अर्थों में ही लिया जा रहा है। उपभोगवादी प्रवृत्ति से ग्रसित प्राणी अपनी सीमित सोच के कारण आसन, प्राणायाम, श्वांस की नियंत्रण क्रिया को

ही 'योग' समझ रहे हैं। जबकि वास्तविक अर्थों में 'योग' द्वारा 'आत्मदर्शन' किया जाय तो उसकी पूर्णतः अर्थात् 'ईश' की साकार या निराकार रूप की अनुभूति की जानी चाहिए। जैसे कि कई संत, महात्माओं द्वारा की गयी हैं जैसे, महर्षिरमण, परमहंस राम कृष्ण, विवेकानंद, अरविन्द घोष गौतम बुद्ध इत्यादि। योगाभ्यास द्वारा 'आत्म-दर्शन' के साथ-साथ कई मानसिक रोगों और समस्याओं को ठीक किया जा सकता है। जैसे—

- योग द्वारा व्यक्ति की चिंता, तनाव, संघर्ष व शिथिलता को दूर कर मानसिक रूप से स्वास्थ्य प्राप्त कर तनाव रहित होना।
- योग क्रियाओं के माध्यम से स्नायुमंडल, मेरुदंड और मन—मस्तिष्क को स्वास्थ्य और ऊर्जावान तथा पुष्टता प्रदान की जा सकती है। जिससे मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि की जा सके।
- शारीरिक दोष और मानसिक व्याधियों की दूर करने के योग शिक्षा का विशेष योगदान दिया जा सकता है। योग द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ सबल बनती हैं। उनकी संवेदना और ग्रहणशीलता में भी वृद्धि होती है। मानसिक व्याधियों तथा शारीरिक रोगों में 'योग' के उपचार लाभप्रद होते हैं।

योग द्वारा सर्वाइकल, स्पांडिलाइटिस, डिप्रेशन, अर्थराइटिस, स्लिपडिस्क, श्वास, साइनस, जोड़ों का दर्द इत्यादि रोगों में किया जा सकता है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से मुक्ति में 'योग' का सहयोग तभी संभव है। जब प्रत्येक को योग शिक्षा के सरल व सुगम ज्ञान—विज्ञान से परिचित करवाया जाय। इस हेतु सभी वर्गों व शैक्षिक स्तरों के पाठ्यक्रमों में आवश्यक विषय के रूप में 'योग' को शामिल किया जाय। क्योंकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास करना है, तो उसके शारीरिक व मानसिक विकास के साथ आपके नैतिक, पारिश्रमिक और आध्यात्मिक विकास पर भी अधिक बल देने की आवश्यकता है। "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक

और मानव के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। "गांधी जी "शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को पूर्णता प्रदान करना है, जिसके लिए वे योग्य हैं।" प्लेटो योगाभ्यास से 'आध्यात्मिक विकास' के प्रबलता को तीव्र करने की आवश्यकता है, जिससे शिक्षा द्वारा बालक के सर्वांगीण विकास की संकल्पना को साकार किया जा सके। योग शिक्षा प्राथमिक से लेकर माध्यमिक और विश्वविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों में अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित कर देश की युवा पीढ़ी, का सर्वांगीण व सर्वोत्तम विकास हो सके और पूर्व की तरह देश, नैतिक, चारित्रिक व्यक्तित्व से पुनः गौरान्वित हो सके। देश के शिक्षक संस्थाओं में 'योग शिक्षा' को निम्नांकित रूप से दी जानी चाहिए।

1. प्राथमिक स्तर से ही योग साधना के द्वारा विद्यार्थियों के आत्मिक व आध्यात्मिक विकास करने शिक्षा दी जानी चाहिए।
2. युवा पीढ़ी, जो संघर्ष की स्थिति में होती है। उसे विभिन्न मानसिक समस्याओं से ग्रसित होने से रोकना चाहिए।
3. 'योग' संबंधी साहित्यों की जानकारी देना। प्रत्येक स्तर पर 'योग साहित्य में शामिल करना। जिससे उत्तम-आचरण और संस्कारों को विकसित किया जा सके।
4. 'युवा पीढ़ी' के साथ प्रारम्भिक शैक्षिक स्तर पर शाश्वत मानवीय मूल्यों को विकसित करना।
5. किसी रोग से ग्रसित होने पर बच्चों 'योगिक' क्रियाओं प्राणायाम, आयाम अत्यादि की शिक्षा देना।

सामाजिक विकास के उन्नति व उत्थान में योग शिक्षा का योगदान निम्नवत हो सकता है—

1. सामाजिक कल्याण की भावना से व्यक्ति के तन व मन के स्वस्थ रखकर उसकी कार्य क्षमताओं में वृद्धि की जा सकती है।
2. कहा भी गया है 'जैसा खाए अन्न वैसा होवे मन' तामसी भोजन की अपेक्षा सात्विक भोजन, (शाकाहार) पर बल दिया जाय। जिससे युवा

पीढ़ी आचरण व व्यवहार से भारत का भविष्य सुरक्षित किया जा सके।

बालक के नैतिक व संवेगात्मक विकास में 'योग' द्वारा सद्आचरण, संयम, इन्द्रिय निग्रह, कर्तव्य निष्ठा, दया सहानुभूति, सहयोग इत्यादि जीवन मूल्यों को विकसित करना। तो वही संस्कृतिक विकास में युवा वर्ग को पाश्चात्य की अपेक्षा भारतीय संस्कृति के महत्व को न केवल बताना बल्कि उसकी सुरक्षा व संरक्षक हेतु भारतीयता को अपनाने के लिए योग शिक्षा दी जानी चाहिए। **आध्यात्मिक विकास** योग द्वारा ही संभव है। इसीलिए शरीर के महत्व की अपेक्षा आत्मिक विकास करना होंगे। अर्थात् स्थूल शरीर की अपेक्षा 'सूक्ष्म शरीर' के अस्तित्व का बोध कराना होगा। अन्यथा आध्यात्मिक आधार खोखला ही न रह जाए।

निष्कर्षता किसी समाज को तभी पूर्णतया विकसित माना जा सकता है। जब वहाँ के व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ हों और वह चरित्रवान, निष्ठावान होने के साथ-साथ अपनी कार्य क्षमताओं को कौशल युक्त बनाया जा सके। ऐसा तभी संभव है, जब व्यक्ति सक्रिय, सजग, प्राणि के रूप में अपना योगदान दे सकें। समाज को शिक्षित कर उसकी आज्ञानता को दूर करें। जिसको भारतीय समाज को भविष्य में आने वाले स्वस्थता के संकेत से बचाया जा सके। और 'ज्ञान' की रोशनी में 'योग' की शरण में जीवन को भविष्य में सुरक्षित व संरक्षित और ऊर्जावान बनाया जा सके।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद् भागवत गीता—प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. पाण्डेय, डॉ० राम शकल — शिक्षा के दर्शनिक आधार, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. सिंह, डॉ० मधुरिमा सिंह, शिक्षा एवं समाज, आलोक प्रकाशन लखनऊ
4. लाल, रमन, विहारी (2003) शिक्षा के सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिशिंग
- 5- Saxena N.R. Swaroop, Foundation of Educational Through & Practice "R. Wall, Boack Depot, MRT.

Weblink

- [http: // sarkari giuder.in](http://sarkari.giuder.in)
- [http: // m.hind.webdunia.com](http://m.hind.webdunia.com)
- <http://him.wikipedia.org>.

- <http://www.yaasyc.in/2021/02>
- [http:// www.mehtvta.com/](http://www.mehtvta.com/)
- [http:// research gate.net](http://researchgate.net)